अष्टम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर-मन्दिर में नरेन्द्रादि भक्तों के संग में)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण काली-मन्दिर के उसी पूर्वपरिचित कमरे में छोटी खाट पर बैठे गाना सुन रहे हैं। ब्राह्मसमाज के श्रीयुक्त त्रैलोक्य सान्याल गाना गा रहे हैं।

आज रविवार, 20वाँ फाल्गुन; शुक्ला पञ्चमी तिथि। 1290 (बं० साल); 2 मार्च, 1884 ईसवी। फर्श पर भक्तगण बैठे हैं और गाना सुन रहे हैं। नरेन्द्र, सुरेन्द्र (मित्र), मास्टर, त्रैलोक्य आदि अनेक बैठे हैं।

श्रीयुक्त नरेन्द्र के पिता बड़ी अदालत में वकील थे। उनके परलोक-गमन से परिवार-वर्ग के लोग बड़े ही कष्ट में पड़ गए हैं। यहाँ तक कि बीच-बीच में खाने को भी कुछ नहीं रहता। नरेन्द्र इन समस्त चिन्ताओं से अति कष्ट में हैं।

ठाकुर का शरीर, हाथ टूटने की अवधि से अभी तक भी ठीक नहीं हुआ। हाथ को अनेक दिन बड़े यत्न से रखा गया।

त्रैलोक्य माँ का गाना गा रहे हैं। गाने में कह रहे हैं, माँ अपने अंक में लेकर आँचल से ढक कर मुझे छाती से लगाकर रखो—

तोर कोले लुकाये थाकि (मा)।
चेये चेये मुखपाने मा मा मा बोले डाकि।
डूबे चिदानन्दरसे, महायोग निद्रावशे,

देखि रूप अनिमेषे, नयने नयने राखि।
देखेशुने भय कोरे प्राण कैँदे उठे डरे,
राखो आमाय बुके धरे, स्नेहे अञ्चले ढाकि (मा)।

[भावार्थ— आपके अंक में छिपा रहूँ। आपके मुख को देखता-देखता 'माँ-माँ-माँ' कह उठूँ। महायोग में, निद्रा के आवेश में चिदानन्द-रस में डूब कर अपलक तुम्हारा रूप देखकर नयनों में रख लूँ। (यह जगत) देख-सुनकर डर लग रहा है। प्राण डर से रो उठता है। आप मुझे छाती से लगाकर आँचल से ढक कर रखो माँ।]

ठाकुर सुनते-सुनते प्रेमाश्रु-विसर्जन कर रहे हैं और कह रहे हैं, 'आहा! कैसा भाव!'

त्रैलोक्य फिर और गा रहे हैं—

(लोफा)

लज्जा निवारण हरि आमार।
(देखो देखो हे— जेन-मनोवाञ्छा पूर्ण होय)।
भकतेर मान, ओहे भगवान, तुमि बिना के राखिबे आर।
तुमि प्राणपति प्राणाधार, आमि चिरक्रीत दास तोमार।
(देखो देखो देखो हे)।

[भावार्थ— हे हरि, आप मेरी लज्जा-निवारक हैं। देखो-देखो-देखो हे— जैसे मेरी इच्छा पूर्ण हो! हे भगवान! भक्त का मान आपके बिना और कौन रखेगा? आप प्राणपति, प्राणाधार हो। मैं आपका चिरक्रीत (सदा के लिए खरीदा हुआ) दास हूँ।]

(बड़ा दशकशी)

तुया पद सार करि, जाति कुल परिहरि, लाज भये दिनु जलाञ्जलि
(एखन कोथा बा जाइ हे पथेर पथिक होये)
आब हाम तोर लागि, होइनु कलंकभागी,
गंजे लोके कतो मन्द बोलि। (कतो निन्दा कोरे हे,)
(तोमाय भालोबासि बोले) (घरे परे गंजना हे)
सरम भरम मोर, अबहिं सकल तोर,

राखो बा ना राखो तब दाय
(दासेर माने तोमारि मान हरि),
तुमि हे हृदय-स्वामी, तब माने मानी आमि,
करो नाथ जेँऊ तुहे भाय।

[भावार्थ— तुम्हारे चरणों का सार कर लिया है (आश्रय ले लिया है)। जाति, कुल को छोड़कर लज्जा-भय को जलाञ्जलि दे दी है। (अब हे प्रभु! तुम ही बताओ कि रास्ते का पथिक होकर मैं कहाँ जाऊँ?) अब मैं तेरे लिए कलंक का भागी हो गया हूँ। जगत में मुझे सब कितना बुरा कहते हैं (कितनी निन्दा करते हैं)! (तुम्हें प्यार करता हूँ, इस कारण घर में खूब भला-बुरा सुनना पड़ता है।) शर्म-भ्रम मेरा अब सब तुम्हारा है। रखो या न रखो— सब तुम्हारा दायित्व है। (दास का मान तुम्हारा ही मान है, हे हरि!) तुम ही मेरे हृदय-स्वामी हो, तुम्हारे मान में ही मेरा मान है। हे नाथ! तुम्हें जो अच्छा लगे, वही करो।]

(छोटा दशकशी)

घरेर बाहर करि, मजाइले यदि हरि,
देओ तबे श्रीचरणे स्थान,
(चिर दिनेर मत) अनुदिन प्रेममधु, पियाओ पराण बन्धु,
प्रेमदासे करो परित्राण।

[भावार्थ— घर से बाहर निकाल कर, यदि आपने मोहित कर लिया है तो हे हरि, अपने चरणों में स्थान दे दो। (सर्वदा की भाँति) रात-दिन लगातार प्रेम-मधु पिलाओ। हे प्राण-बन्धु, प्रेमदास का परित्राण करो।]

ठाकुर फिर प्रेमाश्रु-विसर्जन करते-करते फर्श पर आकर बैठ गए और रामप्रसाद के भाव में गाने लगे—

यश अपयश कुरस सुरस सकल रस तोमारि।
(ओ मा) रसे थेके रसभंग केनो रसेश्वरी॥

[भावार्थ— यश-अपयश, कुरस-सुरस— सब रस तुम्हारे ही हैं। (ओ माता), रस में रह कर रस-भंग क्यों कर रही हो, हे रसेश्वरी?]

ठाकुर त्रैलोक्य से कहते हैं,

'आहा! तुम्हारा कैसा गाना! तुम्हारा गाना ठीक-ठीक है! जो समुद्र में गया

था, वही समुद्र का जल लाकर दिखा सकता है!'

त्रैलोक्य फिर गाना गाते हैं—

(हरि) आपनि नाचो, आपनि गाओ,
आपनि बाजाओ ताले ताले,
मानुष त' साक्षी गोपाल मिछे आमार आमार बोले।
छाया बाजीर पुतुल जेमन, जीवेर जीवन तेमन,
देवता होते पारे, यदि तोमार पथे चले।
देह यन्त्रे तुमि यन्त्री, आत्मरथे तुमि रथी,
जीव केवल पापेर भागी, निज स्वाधीनतार फले।
सर्वमूलाधार तुमि, प्राणेर प्राण हृदय-स्वामी,
असाधुके साधु करो, तुमि निज पुण्यबले।

[भावार्थ— (हरि) आप स्वयं नाचते हो, आप स्वयं गाते हो, आप स्वयं ताल पर ताल देते हो। मनुष्य तो केवल साक्षी गोपालवत् झूठ ही मेरा-मेरा कहता रहता है। जीव का जीवन तो ऐसा है, जैसे जादूगर की पुतली की छाया। यदि वह तुम्हारे पथ पर चले तो देवता हो सकता है। देह-यन्त्र में तुम्हीं यन्त्री हो, आत्म-रथ में तुम्हीं रथी हो। जीव अपनी स्वाधीनता के फल से केवल पाप का ही भागी है। सब का मूल आधार, प्राण का प्राण, हृदय-स्वामी तुम हो, तुम अपने पुण्यबल से असाधु को भी साधु बना देते हो।]

(The Absolute identical with the phenomenal world—
नित्यलीला-योग— पूर्णज्ञान या विज्ञान)

गाना समाप्त हो गया। ठाकुर अब बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य और अन्य भक्तों के प्रति)*— हरि ही सेव्य हैं, हरि ही सेवक है— यही भाव पूर्ण ज्ञान का लक्षण है। पहले नेति-नेति करके 'हरि ही सत्य हैं और सब मिथ्या है', ऐसा बोध होता है। तत्पश्चात् वह देखता है कि हरि ही सब कुछ बने हुए हैं— ईश्वर ही माया, जीव, जगत ये सब कुछ बने हैं। अनुलोम होने से फिर विलोम होता है। पुराणों का यही मत है। जैसे एक बेल के भीतर गूदा, बीज और खोल होता है। खोल और बीज फेंक देने पर केवल गूदा मिल जाता है, किन्तु यदि यह जानना हो कि बेल का वजन

कितना है तो खोल-बीज निकाल देने से नहीं चलेगा। जभी जीव-जगत को छोड़ कर पहले सच्चिदानन्द में पहुँचना होता है, तब फिर सच्चिदानन्द को प्राप्त करके देख लेता है कि वे ही यह समस्त जीव-जगत बने हुए हैं। गूदा जिस वस्तु का है, बीज और खोल भी उसी वस्तु से ही हुआ है— जैसे छाछ का मक्खन है और मक्खन की ही छाछ है।

''तब भी कोई कह सकता है, सच्चिदानन्द इतना कठोर कैसे हुआ! इस जगत को दबाएँ तो खूब कठोर लगता है। उसका उत्तर यह है कि शोणित, शुक्र (blood, semen) इतनी तरल वस्तु है, किन्तु उससे इतना बड़ा जीव— मनुष्य तैयार हो जाता है! उनसे सब ही हो सकता है।

''एक बार अखण्ड सच्चिदानन्द पर पहुँच कर तत्पश्चात् नीचे उतर कर यह सब देखना।''

(संसार ईश्वर बिना नहीं— योगी और भक्त का प्रभेद)

''वे ही सब होकर रह रहे हैं। संसार उनके बिना कुछ नहीं है। गुरु से वेद पढ़ कर रामचन्द्र जी को वैराग्य हो गया। वे कहने लगे, संसार यदि स्वप्नवत् है तब तो संसार छोड़ना ही अच्छा है। दशरथ को बड़ा भय हुआ। उन्होंने राम को समझाने के लिए गुरु वशिष्ठ को भेज दिया। वशिष्ठ बोले, 'राम, तुम संसार (गृहस्थ) का त्याग करने के लिए क्यों कहते हो? तुम मुझे समझा दो कि संसार ईश्वर के बिना है? यदि तुम समझा सको कि ईश्वर से संसार नहीं हुआ है तो तुम त्याग कर सकते हो।' राम तब चुप हो गए, कोई उत्तर नहीं दे पाए।

''सब तत्त्व अन्त में आकाश-तत्त्व में लीन होते हैं। और फिर सृष्टि के समय आकाश-तत्त्व से महत्-तत्त्व, महत्-तत्त्व से अहंकार, इसी क्रम से सृष्टि हुई है। अनुलोम, विलोम। भक्त सब को लेता है। भक्त अखण्ड सच्चिदानन्द को भी लेता है, और फिर जीव-जगत को भी लेता है।

''योगी का पथ किन्तु अलग है। वह परमात्मा में पहुँच जाता है और

लौटता नहीं। उसी परमात्मा के संग में योग हो जाता है।

''थोड़े-से के भीतर में जो ईश्वर को देखता है, उसका नाम खण्डज्ञानी है— वह सोचता है कि इसके उस ओर वे नहीं हैं।

''भक्त की तीन श्रेणियाँ हैं—
अधम भक्त कहता है, 'वह ईश्वर है,' अर्थात् आकाश की ओर वह दिखाई देता है।

''मध्यम भक्त कहता है कि वे हृदय के बीच अन्तर्यामी रूप में हैं। और

उत्तम भक्त कहता है, वे सब कुछ बने हुए हैं— जो कुछ देख रहा हूँ सब उनका ही एक-एक रूप है। नरेन्द्र पहले ठट्ठा (मज़ाक) किया करता था, 'वे ही सब बने हैं, तो फिर ईश्वर घटि, ईश्वर बाटी (ईश्वर लोटा, ईश्वर कटोरा।') *(सब का हास्य)*।

(ईश्वर-दर्शन से संशय जाता है— कर्मत्याग होता है— विराट शिव)

''किन्तु उनका दर्शन कर लेने पर सब संशय चले जाते हैं। सुनना एक, देखना एक। सुनने से सोलह आने विश्वास नहीं होता। साक्षात्कार हो जाने पर फिर विश्वास में कुछ बाकी नहीं रह जाता।

''ईश्वर-दर्शन कर लेने पर कर्मत्याग होता है। मेरी उस प्रकार की पूजा चली गई। काली-मन्दिर में पूजा किया करता था। हठात् दिखा दिया, सब चिन्मय— कोषा-कुषि, वेदी, घर की चौखट, सब चिन्मय! मनुष्य, जीव-जन्तु— सब चिन्मय! तब उन्मत्त की न्यायीं चारों ओर पुष्प-वर्षण करने लगा। जो देखता हूँ, उसी की पूजा करता हूँ!

''एक दिन पूजा के समय शिव के मस्तक पर वज्र (त्रिशूल का निशान) लगा रहा था, तब दिखा दिया, वह 'विराट मूर्ति' ही शिव है। तब शिव बनाकर पूजा बन्द हो गई। फूल तोड़ रहा हूँ, हठात् दिखा दिया कि फूलों का एक-एक पेड़ मानो फूलों का एक-एक गुलदस्ता है।''

(काव्य-रस और ईश्वर-दर्शन का प्रभेद— 'न कवितां वा जगदीश')

त्रैलोक्य— आहा, ईश्वर की रचना कितनी सुन्दर है!

श्रीरामकृष्ण— नहीं जी, ठीक दप् करके दिखा दिया, हिसाब करके नहीं। दिखा दिया मानो एक-एक पुष्प-वृक्ष एक-एक तोड़ा (गुलदस्ता) उसी 'विराट मूर्ति' के ऊपर सजा हुआ है। उसी दिन से फूल चुनना बन्द हो गया। मनुष्य को मैं ठीक उसी रूप से देखता हूँ। वे ही जैसे मनुष्य-शरीर लेकर हिलते-डुलते टहल रहे हैं— जैसे तरंग के ऊपर एक तकिया तैर रहा है— तकिया इधर-उधर हिलता, झूमता हुआ चला जा रहा है, किन्तु तरंग लगने से एक बार ऊँचा होता है और फिर लहर के संग में नीचे आ गिरता है।

(ठाकुर का शरीर-धारण क्यों— ठाकुर की साध)

''शरीर दो दिन के लिए है। वे ही सत्य हैं। शरीर अभी है, अभी नहीं। काफी दिन हुए जब पेट की बीमारी से इतना कष्ट भोग रहा था, हृदय ने कहा— 'माँ से एक बार कहो ना, जिससे आराम हो जाए'। रोग के ठीक होने के लिए कहते लज्जा हुई। कहा था, 'माँ सोसायटी (Asiatic Society) में मनुष्य का पिंजर (skeleton) देखा था— तार द्वारा जोड़-जोड़ कर मनुष्य आकृति बना रखी थी, माँ! उसी तरह इस शरीर को ऐसा सख्त (मजबूत) बना दो, जिससे मैं तुम्हारा नाम-गुणकीर्त्तन करूँ'।

''बचने की इच्छा क्यों? रावण-वध के बाद राम-लक्ष्मण ने लंका में प्रवेश किया। रावण के घर में जाकर देखा, रावण की माँ निकषा भागी जा रही है। लक्ष्मण ने आश्चर्य से कहा, राम! निकषा का सारा वंश-नाश हो गया है फिर भी प्राण के ऊपर इतना आकर्षण है! निकषा को पुकार कर राम ने कहा, 'तुम्हें भय नहीं। तुम क्यों भाग रही थीं'? निकषा ने कहा, 'राम! मैं इसलिए नहीं भाग रही थी। बची हुई थी, इसी कारण तुम्हारी इतनी लीला देख पाई हूँ। यदि और भी बची रहूँ तो और भी कितनी लीला देख पाऊँगी! तभी बचने की साध है'।

''वासना न रहे तो शरीर धारण नहीं होता।

(सहास्य) ''मेरी एक-आधी साध थी। कहा था— 'माँ, कामिनी-काञ्चन-त्यागी का संग दो'। और कहा था, 'तेरे ज्ञानी और भक्त का संग करूँगा। इसलिए थोड़ी-सी शक्ति दे, जिससे घूम-फिर सकूँ— यहाँ-वहाँ (इधर-उधर) जा सकूँ'। वैसी घूमने-फिरने की शक्ति तो किन्तु नहीं दी!''

त्रैलोक्य *(सहास्य)*— साध क्या मिट गई?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ज़रा-सी बाकी है। *(सबका हास्य)*।

''यह शरीर तो दो दिन के लिए है। हाथ जब टूट गया था, तब माँ से कहा था, माँ बड़ा दर्द लगता है! तब दिखा दिया गाड़ी और उसका इञ्जीनियर। गाड़ी का एक-आध स्क्रू अलग हो गया है। इञ्जीनियर जिस प्रकार गाड़ी चला रहा है, गाड़ी उसी प्रकार चलती है। अपनी कोई क्षमता नहीं है।

''तो फिर देह की रक्षा का यत्न क्यों करता हूँ? ईश्वर को लेकर सम्भोग करूँगा, उनका नाम-गुण करूँगा, उनके ज्ञानी भक्तों को देखता हुआ फिरूँगा।''

द्वितीय परिच्छेद

(नरेन्द्रादि के संग में— नरेन्द्र का सुख-दुःख— देह का सुख-दुःख)

नरेन्द्र फर्श पर सम्मुख बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य और भक्तों के प्रति)*— देह का सुख-दुःख तो है ही। देखो ना नरेन्द्र को ही— बाप मर गए हैं— घर में बहुत कष्ट है, कोई उपाय ही नहीं बन पा रहा। वे कभी सुख में रखते हैं, कभी दुःख में।

त्रैलोक्य— जी, ईश्वर की (नरेन्द्र के ऊपर) दया होगी।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— फिर कब होगी! काशी में अन्नपूर्णा के घर में कोई अभुक्त (भूखा) चाहे नहीं रहता, किन्तु किसी-किसी को सन्ध्या पर्यन्त बैठे रहना पड़ता है।

''हृदय ने शम्भु मल्लिक से कहा था, मुझे कुछ रुपया दें। शम्भु मल्लिक का अंग्रेज़ी मत था। उसने कहा, तुम्हें रुपया क्यों दूँ? तुम कमा कर खा सकते हो, तुम कैसा भी हो रोज़गार करते हो। फिर भी जो कोई बहुत गरीब हो उसकी और बात है, या अन्धा, लँगड़ा, पँगु हो— इनको देने से काम होता है। तब हृदय बोला, महाशय! आप ऐसा मत कहें। मुझे रुपया नहीं चाहिए। ईश्वर करे जैसे मुझे अन्धा, पँगु, अति दरिद्र इत्यादि न होना पड़े। आप को देने की आवश्यकता नहीं, मुझे भी लेने का प्रयोजन नहीं।

(नरेन्द्र और नास्तिक मत— ईश्वर का कार्य और भीष्मदेव)

'ईश्वर नरेन्द्र पर अभी भी दया क्यों नहीं करते', मानो इसी बात पर अभिमान करके यह बात कहते हैं। ठाकुर नरेन्द्र की ओर बीच-बीच में सस्नेह देखते हैं।

नरेन्द्र— मैं नास्तिक मत पढ़ रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— दोनों ही हैं, अस्ति और नास्ति। फिर अस्ति को ही क्यों नहीं लेते?

सुरेन्द्र— ईश्वर तो न्याय-परायण हैं। वे तो भक्त को देखेंगे।

श्रीरामकृष्ण— कानून (शास्त्र) में है, पूर्वजन्म में जिन्होंने दान-वान कर रखा है, उनके ही धन होता है! फिर भी क्या है, जानते हो? यह संसार उनकी माया है। माया के काम में बहुत-कुछ गोलमाल होता है, कुछ भी समझ में नहीं आता!

''ईश्वर का कार्य कुछ समझ में नहीं आता है। भीष्मदेव शरशय्या पर लेटे हैं। पाण्डव देखने आए। संग में कृष्ण हैं। आकर क्षण भर पश्चात् देखते हैं, भीष्मदेव रो रहे हैं। पाण्डवों ने कृष्ण से कहा, कृष्ण कैसा आश्चर्य! पितामह अष्टवसुवों में एक वसु हैं। इनके जैसा ज्ञानी दिखाई नहीं देता। ये भी मृत्यु के समय मरने पर क्रन्दन कर रहे हैं! कृष्ण ने कहा, भीष्म इसलिए नहीं रो रहे। उनसे ही पूछ कर देख लें। पूछने पर भीष्म बोले, 'कृष्ण! ईश्वर के कार्य को कुछ भी समझ न सका! मैं इसलिए रो रहा हूँ कि संग-संग

साक्षात् नारायण फिर रहे हैं किन्तु पाण्डवों की विपद का शेष नहीं! यह बात जब सोचता हूँ, देखता हूँ उनका कार्य कुछ भी समझ में आने वाला नहीं!'

(शुद्ध आत्मा एकमात्र अटल— सुमेरुवत्)

''मुझे उन्होंने दिखाया था, परमात्मा, जिसको वेद में शुद्ध आत्मा कहते हैं, वे ही केवल एकमात्र अटल सुमेरुवत् निर्लिप्त और सुख-दु:ख के अतीत हैं। उनकी माया के कार्य में बड़ी गड़बड़ है। इसके बाद वह, और फिर वह होगा— यह सब नहीं कहा जा सकता।''

सुरेन्द्र *(सहास्य)*— पूर्वजन्म में दान-पुण्य करने से फिर धन होता है, तब तो फिर हमें तो दान-वान करना उचित है।

श्रीरामकृष्ण— जिसके पास रुपया है, उसको देना उचित है।
(त्रैलोक्य के प्रति) जयगोपाल सेन के पास रुपया है। उसको दान करना उचित है। वह जो नहीं करता, वही निन्दा की बात है। किसी-किसी के पास रुपया होने पर भी हिसेवी (कृपण) होता है। वह रुपया फिर कौन भोग करेगा— उसका निश्चय नहीं!

''उस दिन जयगोपाल आया था। गाड़ी में आता है। गाड़ी में टूटी लालटैन, मरघट से लौटा हुआ घोड़ा, मैडिकल कालेज के हस्पताल से लौटा हुआ दरबान, और यहाँ के लिए लेकर आया दो सड़े अनार।'' *(सब का हास्य)*।

सुरेन्द्र— जयगोपालबाबू ब्राह्मसमाज के हैं। अब लगता है केशवबाबू के ब्राह्मसमाज में वैसे व्यक्ति नहीं हैं। विजय गोस्वामी, शिवनाथ तथा और-और जनों ने साधारण ब्राह्मसमाज बना लिया है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— गोबिन्द अधिकारी यात्रा (गीतिनाटक-मण्डली) के दल में अच्छे लोग नहीं रखता था। कारण— हिस्सा देना होगा।
(सबका हास्य)।

''केशव के एक शिष्य को उस दिन देखा। केशव के घर में नाटक हो रहा थ। देखा, वह व्यक्ति लड़के को गोद में लेकर नाच रहा है! और भी

सुना, वह लैक्चर देता है। निज को कौन शिक्षा दे— इसका पता नहीं।''

त्रैलोक्य गा रहे हैं—

चिदानन्द सिन्धुनीरे प्रेमानन्देर लहरी।
(चिदानन्द रूपी समुद्र जल में प्रेम-आनन्द की लहर है।)

गाना समाप्त हो जाने पर श्रीरामकृष्ण त्रैलोक्य से कहते हैं, वही गाना तो गाओ ना भाई— 'आमाय दे मा पागल कोरे।' (मुझे पागल कर दो माँ।)